

परमकृपासिन्धु सुविहितायणी सुविशालगच्छाधिप।

सिद्धान्तमहोदधि

पूज्यपाद आचार्यभगवन्त श्रीमद्

विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

के

पवित्र करकमलों

में

इस अथरत्न को विनम्रभाव से

सादर समर्पण करता हूँ ।

शंकरलाल मुणोत

प्रथम संस्करण — १९९०

उससे गहित की क्रिया कुलटानारी उपवामादि तुल्य क्रिया, लोह-संज्ञा एवं इन्द्रिय-अनुश्रोतगमन का त्याग, दग्ध का त्याग, फलनः असंक्लिष्ट संपत्ति, निग्नवन्व अशुभकर्म, मानुषन्त क्रिया, समंत-भद्रता, परार्थ साधकता, अनेक भविक आगमनावगम चक्रम भव, सर्व-कर्मक्षय-इत्यादि प्रतिपादित है ।

(५) 'प्रव्रज्या-फल' नाम के पंचम सूत्र में मोक्ष का विशिष्ट स्वरूप वर्णित किया गया है । साथ साथ सायोनिक सुख की दुःख-रूपता, असायोनिक सुख की बुद्धिगम्यता, मुक्त के कभी भी पुनः पतन का अभाव, दिव्यज्ञान की निर्युक्तिकता, अभ्युदयगति से मिद्ध-शिलागमन, संसार का अविच्छेद, त्रिकोटिपरिशुद्ध जिज्ञासा का योग्य को ही दान, इत्यादि का भी सुंदर प्रतिपादन है ।

ऐसे महान प्रोढ़ शास्त्र पर आ. श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज ने संस्कृत भाषा में सुन्दर स्पष्ट सुबोध टीका यानी विवेचन लिखा है । कई स्थान पर मूल सूत्र में कही बात का समर्थन करने के लिए प्रबल युक्ति - उपपत्ति भी आपने सुन्दर दी है, और कईयों के गहस्यों का अनन्यलभ्य उद्घाटन किया है । माराण, अपने लेख से 'पंचसूत्र' की महाशास्त्रता का उत्तम आविर्भाव किया है ।

यही सोचने योग्य है कि १४४४ शास्त्रों के प्रणेता, संस्कृत प्राकृत साहित्य के गगनमण्डल में मार्तण्ड सा साहित्य के विधाता, स्वपर दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान, अपूर्व ज्ञानगंगा के हिमाचल, निष्पन्न समदर्शी आलोचक, साहित्य - तवारिख में सुवर्णाक्षरों से अद्वित, महान शासनभावक आचार्य भगवान श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज जैसे जिम पर विवेचनार्थ अपनी सूत्र-सी कलम उठावे, वह ग्रन्थ कितना उत्तम, उपयुक्त, एवं अध्ययन-मनन-भावनाई होगा !

इसी प्रेरणा से यह हिन्दी प्रकाशन किया जाता है । ग्रन्थ का हिन्दी



७. परममनस की प्राप्ति
८. परममनस का स्वरूप
९. निर्गुणता का मत
१०. अनुभवेय्य मिदित्वा
११. अनुभवेय्य मिदित्वा-गुण
१२. सद्ध अथवा की मोक्षार्था
१३. दिव्यता-भक्त्यर्थ का वाद
१४. मुक्ति पर मत्-अमत् का विचार
१५. सिद्धि का स्थान, गति आदि
१६. जिनाज्ञा के लिए पात्र अपात्र निम्न

— — —

ॐ गौरी - वन्दन ॥

पङ्क्ति	श्लोक	मन्त्र	श्लोक
१	ॐ	गौरी गङ्गा नमो	गौरी, गङ्गा नमो
२	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
३	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
४	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
५	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
६	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
७	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
८	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
९	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१०	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
११	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१२	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१३	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१४	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१५	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१६	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१७	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१८	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
१९	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२०	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२१	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२२	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२३	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२४	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२५	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२६	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२७	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२८	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
२९	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो
३०	ॐ	गङ्गा नमो	गङ्गा नमो

(१८)

पाक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	६	संपादणे विभासा ।
३६	२३	अवधीरणा करता
३७	१०	होने से अर्थहेतु
"	१२	हेय । उपादेय
"	१६	मार्गगामी के
४०	१०	॥७॥
४१	१५	आने पर भी
"	१६	होने से और
४७	१८	परिनिर्माण
४६	१२	उत्कृष्टता के धारण
"	१६	पर की अपेक्षा
५६	१६	निमित्त विकार
६२	५	जो पुनर्बन्धक
"	१६	उम ही का
		मपादणे विभासा ।
		अवधीरणा यानी कमगि
		होने से अर्थहेतु
		हेय-उपादेय
		मार्गगामी के
		।
		आने पर भी (१) ...
		होने से और (४) ...
		परिनिर्वाण
		उत्कृष्टता के कारण
		पर की अपेक्षा में ...
		निर्मित विकार
		जो अपुनर्बन्धक
		उमी का



मूल—एअस्स रं वुच्छत्ती सुद्धवम्माओ । सुद्धवम्म-
संपत्ती पावकम्मविगमाओ । पावकम्मविगमो तद्वाभवत्ताऽ-
मावओ ॥३॥

मूल—तस्म पुण विवागसाहणाणि—(१) चउमरणममणं
(२) दुक्कडगरिहा (३) सुकडाण(णाऽऽ)सेवणं ॥४॥

मूल—अपो कायव्वमिणं होउकामेणं सया गुप्पणिहाणं
भज्जो भज्जो संकिलेमे. तिकालममंकिलेमे ॥५॥

मूल—तहा पसंतगंभीरासया, सावज्जलोगविरया,
पंचविहायारजाणगा, परोवयारनिरया, पउमाइनिदंसणा,
भाणज्झयणसंगया, विसुज्झमाणभावा साहू सरणं ॥८॥

मूल—तहा सुरासुरमणुअपूइओ, मोहतिमिरंसुमाली,
रागदोसविसपरममंतो, हेऊ सयलकल्लाणाणं, कम्मवण-
विहावसू, साहूगो मिद्धभावस्स, केवल्लिपणत्तो धम्मो,
जावज्जीवं मे भगवं सरणं ॥९॥

कृतकृत्य हो चुके हैं—जिन्हें कुछ भी करना शेष नहीं रहा है, ऐसे
मिद्ध भगवान मेरे लिए शरण हैं आप ही मेरे आधार हैं ॥७॥

अर्थ—तथा अत्यन्त शांत और गम्भीर आशय (चित्त व्यापार
वाले, पापशुक्त मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति के त्यागी
पौन प्रकाश के आचार (ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्र्याचार, तथा
चार, योग्याचार) के छात्र, धर्मदेशना - धर्मसंस्कारन - धर्मरक्षण
तथा परोपकार में निरत, कमल आदि ती उपमाओं में उपमित
पद्मसदृश आचरण में स्थित तथा समिति गुणि आदि शास्त्र
विहित आचरणों द्वारा आत्म परिणामों की उत्तरोत्तर वृद्धि करने
वाले हैं। भगवान मेरे लिए शरण हैं मेरे आधार हैं ॥८॥

मूल—तथा पसंतगंभीरासया, सावज्जजोगविरया,
पंचविहायारजाणया, परोचयारनिरया, पउमाइनिदंसणा,
आणज्भयणसंगया, विसुज्झमाणभावा साहू सरणं ॥८॥

मूल—तथा सुरासुरमणुयपूढयो, मोहतिमिरंसुमाली,
रागदोसविसपरममंतो, हेऊ सयलकल्लाणायं, कम्मवण-
विहावसू, साहगो मिद्धभावस्स, केवल्लिपणत्तो धम्मो,
जावज्जीवं मे भगवं सरणं ॥९॥

कृतकृत्य हो चुके हैं—जिन्हें कुछ भी करना शेष नहीं रहा है, ऐसे
सिद्ध भगवान् मेरे लिए शरण हैं आप ही मेरे आधार हैं ॥७॥

अर्थ—तथा अत्यन्त शांत और गम्भीर आशय (चित्त व्यापार)
वाले, पापयुक्त मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति के त्यागी,
पाँच प्रकार के आचार (ज्ञानाचार, दर्शनाचार चारित्र्याचार, तपा-
चार, वीर्याचार) के धाता, धर्मदेशना - धर्ममम्मादन - धर्मरक्षण
द्वारा परोपकार में निरत, कमल आदि की उपमाओं से उपमित,
प्रशस्त ध्यान एवं स्वाध्याय में लीन तथा समिति-गुप्ति आदि शास्त्र-
विरहित अनुष्ठानों द्वारा आत्म परिणामों की उत्तरोत्तर विशुद्धि करने
वाले मायु भगवान् मेरे लिए शरण हैं मैं आपके शरण में हूँ ॥८॥

अर्थ—तथा जो गुरु (ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों) और
आगों (महत्तम और व्यन्तर देवों) और विनाशक आदि मनुष्यों
द्वारा परित है, जो मोह रही अन्धकार को हटाने के लिए गुरु के
समाप्त है, राग द्वेष र पी विष को नष्ट करने के लिए उत्तम मन्त्र के
समाप्त है, समस्त इच्छाओं का एकमात्र कारण है, कर्म रही वन

मूल—होउ मे ऐसा सम्मं गरिहा । होउ मे प्रकरणनि
 मो । बहुमयं ममेग्रंति इच्छामि अणुगट्टि अरहंताणं भगवंताणं
 गुरुणं कल्लाणमित्ताणंति ॥११॥

अब तक अरहन्त देवों, सिद्ध भगवन्तो, आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी तथा अन्य माननीय, पूजनीय (मानार्मिक आदि) धर्मपात्रों के प्रति तथा अनेक जन्मों के माता-पिताओं, वन्धुओं, (मगे-सम्बन्धियों) मित्रों उपकारियों के प्रति तथा मोक्षमार्ग में स्थित या कुमार्ग में स्थित सभी जीवों के प्रति ज्ञान-दर्शन चरित्र रूपा मोक्ष मार्ग में साधनभूत (उपकारक) जिनविषय पुस्तक रजोहरणादि के प्रति या मोक्षमार्ग में असाधनभूत (अनुपकारक) वस्तुओं के प्रति मैंने जो भी न करने योग्य, अवाञ्छनीय, पाप रूप एवं पाप की परम्परा का जनक अनुचित आचरण किया हो, चाहे वह सूक्ष्म (अल्प) हो या स्थूल (बहुत) हो, मन से या वचन से या कार्या से स्वयं किया हो या दूसरे से करवाया हो या करने का अनुमोदन किया हो, राग से द्वेष से या मोह से प्रेरित होकर, इस जन्म में या दूसरे जन्मों में किया हो, वह सब अब मेरे लिए गर्हणीय निन्दनीय है, दुष्कृत-अधर्म रूप है, त्याज्य है, ऐसा मैंने कल्याण मित्र (मेरी आत्मा का कल्याण चाहने वाले—आत्म कल्याण में प्रवृत्त करने वाले) गुरु भगवन्तो के वचन से जाना है और 'आपका वचन सत्य है' इस प्रकार से वे वचन मुझे श्रद्धापूर्वक रुचिकर भी हुए हैं। अतएव मैं अरिहन्त और सिद्ध भगवन्तो के सामने अपने उस पापाचार की गद्दी करता हूँ, वह दुष्कृत-अधर्मरूप होने से उनकी निन्दा करता हूँ, और उसका त्याग करता हूँ। अतएव मेरा वह पाप मिथ्या हो, मेरा वह पाप मिथ्या हो, मेरा वह पाप मिथ्या हो ॥१०॥

अर्थ—मेरी यह दुष्कृत गद्दी सच्ची हो हार्दिक हो। आगे

मूल—सर्व्वेसिं सावगाणं सुखमाहणजोगे, सर्व्वेसिं
देवाणं सर्व्वेसिं जीवाणं होउकामाणं कल्लाणासयाणं
मग्गसाहणजोगे ॥१४॥

मूल—होउ मे एमा अणुमोअणा सम्मं विहिपुव्विआ,
सम्मं सुद्धायया, सम्मं पडिवत्तिरूवा, सम्मं निरइयारा,
परमगुणजुत्तअरहंताइमामत्थाओ । अचित्तसत्तिजुत्ता हि ते
भगवंतो वीअरागा मव्वएण् परमकल्लाणा परमकल्लाण-
हेऊ सत्ताणं ॥१५॥

सुकृत का सेवन करता हूँ । ममस्त अरहन्त भगवन्तो के लोकोत्त
धर्मदेयता आदि अनुष्ठानों की अनुमोदना करता हूँ । ममस्तसिद्ध
भगवन्तो के मिद्धभाव अव्याबावस्थिति, अनन्तअक्षयसुप-
स्कटिक के सदृश निष्कलरु शुद्ध आत्मस्वरूप आदि की अनुमोदना
करता हूँ । ममस्त आचार्यों के पाच आचार्यों की अनुमोदना करत
ह । ममस्त उपाध्यायों के सूत्रप्रदान की अनुमोदना करता हूँ । ममस्त
साधुओं की अहिंसा, मयम, तप, ध्यान, अध्ययन आदि-आदि शुभ
क्रियाओं की अनुमोदना करता हूँ ॥१३॥

अर्थ—ममस्त श्रावकों के देवभक्ति, गुरुभक्ति, धर्मगम, दान
प्रति, नियम आदि मोक्ष के साधनमूल व्यापारों की अनुमोदना करता
हूँ । आगमत्रय अतएव त्रिगुण आशयवाले ममस्त उपाधि देव-
देव और ममस्त जीवों के मोक्ष मार्ग के साधनयागों की (मार्गानुसा-
रित शान्ति कृशल व्यापार की) अनुमोदना करता हूँ ॥१४॥

अर्थ—लोकोत्तर गुणा से विभूषित श्रीअरहन्त भिन्न भगवा-
न आदि के साधन के प्रदायक से ही यह पूर्वास्त अनुमोदना आगमा-

मूल—एवमेयं सम्मं पदमाणस्स सुणमाणस्स अणुप्पेह-
माणस्स सिद्धिलीभवन्ति परिहायन्ति खिज्जन्ति असुहकम्माणु-
वन्धा । निरणुवंधे वाऽसुहकम्मे भग्गसामत्थे सुहपरिणामेणं,
कडगवद्धे विअ विसे, अप्पफले सिआ, सुहावणिज्जे सिआ,
अणुणभावे सिआ ।

तहा आसगलिज्जन्ति परिपोसिज्जन्ति निम्मविज्जन्ति
सुहकम्माणुवन्धा । साणुवंधं च सुहकम्मं पगिट्ठं पगिट्ठभावज्जिअं
नियमफलं सुपउत्ते विअ महागए सुहफले सिआ, सुहप-
त्तगे मिआ, परमसुहसाहगे सिआ ।

अओ अपडिवधमेयं असुहभावनिरोहेणं सुहभाववी-
अन्ति सुप्पणिहाणं सम्मं पडियच्चं, सम्मं मोअच्चं, सम्मं
अणुप्पेहिअच्चन्ति ॥१७॥

[तीन चार सुकृत की अभिलाषा करने का कथन सुकृत कर-
की अति उरकट अभिलाषा को भी प्रकट करता है] ॥१६॥

अर्थ—हृदय में मयंगभाव धारण करके जो मनुष्य स्वर-
मय्यक प्रकार में इस मूत्र को पढ़ता है, या दूगों में मृत्नता है औ-
र फिर इससे अर्थ का चिन्तन करता है, उसके पूर्ववद्ध अशुभकर्मों का
रस मन्द हो जाता है, उन कर्मों की स्थिति और दलित हो जाती है
जानी है और विशिष्ट अव्यवसाय उपाय होना या अशुभ कर्मों
का अनुपपत्ति (बीज शक्ति) समूल नष्ट हो जाता है। इस
प्रकार इस मूत्र के अध्ययन चिन्तन से जो शुभ परिणाम उद्भूत होता

मूल—तहा तेसु तेसु समायागेंसु मडगमएगागए गिया,
अमुगेऽहं, अमुगकुले, अमुगगिरणे, अमुगधम्मट्टागट्टिए । न
मे तच्चिराहणा, न मे तदारंभो, बुद्धी समेअम्म, एअमित्थ
सारं, एयमायभूयं, एअं हिअं, असारभएणं सच्चं, विसेमओ
अविहिगहणेणं ।

एवमाह तिलोगबंधू, परमकारुणिगे, सम्मं संबुद्धे, भगवं
अरहंतेत्ति, एवं समालोचिअ तदविरुद्धेसु समायागेंसु मम्मं
वहिज्जा, भावमंगलमेअं तन्निष्फतीए ॥११॥

अनुसार संसार का स्वरूप समझा कर उसे धर्म मार्ग में प्रवृत्त करे।
परिवार के प्रति प्रतिफल की अपेक्षा न रखता हुआ अनुकंपाशील
रहे और जल-कमल की भांति अन्तःकरण से ममत्त्वरहित हो ।

सभी जीव पृथक् पृथक् हैं सब की अलग-अलग अपनी मत्ता
है, कोई किसी का नहीं है। ऐसी स्थिति में दूसरे जीवों पर ममत्व
स्थापित करना उन्हें अपना मानना कर्मबन्ध का कारण है ॥१०॥

अर्थ—कुटुम्ब को सताप करने वाला नहीं बरन गुण करने
वाला, अनुकम्पाशील किन्तु अन्तर से ममत्वहीन हो कर जो गृहस्थो-
चित व्यवहार करता है, उनसे व्यवहार करते समय भी ऐसा विचार
करता रहे कि मैं अमुक हूँ, अमुक कुल का हूँ, अमुक का शिष्य हूँ
और धर्म की अमुक भूमिका पर स्थित हूँ। मैंने जो व्रत अंगीकार
किये हैं, उनकी विराधना तो नहीं कर रहा हूँ ? उसका (विराधना
का) आरम्भ तो नहीं हो रहा है ? मेरे धर्मस्थान की वृद्धि हो रही है
न ? इस असार ससार में धर्म ही सार है, वही आत्मा की अपनी

मूल—धम्मो एअस्स ओमहं, एअंतविसुद्धो, महापुरिससेविओ,
सव्वहिअकारी, निरइआरो, परमाणंदहेऊ ।

नमो इमस्स धम्मस्स । नमो एअधम्मपगासगाणं ।
नमो एअधम्मपालगाणं । नमो एअधम्मपरुवगाणं । नमो
एअधम्मपवज्जगाणं ॥१३॥

मूल—इच्छामि अहमिणं धम्मं पडिवज्जित्तए सम्मं
मणवयणकायजोगेहिं । होउ समअं कल्लाणं परमकल्लाणाणं
जिणाणमणुभावओ ॥१४॥

अर्थ—इम भीषण मृत्यु का औपव धर्म है । धर्म एकान्त रूप
से विशुद्ध है, महापुरुषों ने उसका सेवन किया है, प्राणी मात्र के
लिए हितकारी है, निर्दोष है और परमानन्द का कारण है ।

इम धर्म को नमस्कार हो ।

धर्म प्रकाशकों को नमस्कार हो ॥

धर्म का पालन करने वालों को नमस्कार हो ।

धर्म की प्ररूपणा व्याख्या करने वालों को नमस्कार हो ॥

धर्म अंगीकार करने वालों को नमस्कार हो ॥१३॥

अर्थ—मैं इस धर्म को मन वचन और काय के योगों से अंगी-
कार करने का अभिलाषी हूँ । परमकल्याणकारी अहिंसित भगवन्तों
के प्रभाव से मुझे धर्म प्रतिपादित रूप कल्याण की प्राप्ति हो ॥१४॥

इति माधुम्मपरिभावणा मुत्तं मम्मन ॥

卐 पंच सूत्र 卐

[तृतीय सूत्र]

प्रव्रज्याग्रहण-विधि



मूल—परिभाषिए साधुधर्मे जहोदियगुणे जइज्जा सम्म-
मेअं पडिवज्जित्तए अपरोवतावो । परोवतावो हि तप्पडिवत्ति-
विग्धं । अणुपाओ खु एसो । न खलु अकुसलारंभओ हिअं ।

अप्पडिवुद्धे कहिंचि पडिवोहिज्जा अम्मापियरे-उभय-
लोगसफलं जीविअं, समुदायकडा कम्मा समुदायफलत्ति
एवं सुदीहो अविश्रोगो । अएणहा एकरूक्खनिवामिसउण-
तुल्लमेअं । उदामो मच्चू, पच्चासएणो य । दुल्लहं मणुअत्तं
समुदपडिअरयणलाभतुल्लं । अइप्पभूआ अएणे भवा दुक्ख-
बहुला मोहंधयारा अकुसलाणुवधिणो अजुग्गा सुद्धधम्मस्म ।
जुग्गं च एअं पोअभूअं भवसमुद्धे, जुत्तं सकज्जे निउंजिउ
संवरठइअच्छिद्धं नाणकएणधारं तवपवणजवणं ॥१॥

अर्थ—पूर्व सूत्र मे कथित विधि के अनुसार साधु धर्म की
परिभावना से परिभावित होकर और पूर्वोक्त गुण प्राप्त कर लेने के

॥ पंच सूत्र ॥

[तृतीय सूत्र]

प्रव्रज्याग्रहण-विधि



मूल—परिभाणि, माद्वधम्मं जहोदिग्गुणे जउज्जा मम्म-
मेअं पडिवज्जित्तण् अपरोनतावो । परोनतावो हि तप्पडिवत्ति-
विग्घं । अणुपाप्पो मु एसो । न सलु अकुमलारंभयो हिअं ।

अप्पडियुद्धे कहिंचि पडिवोहिज्जा अम्मापियरे-उभय-
लोगमफलं जीविअं, समुदायकडा कम्मा समुदायफलत्ति
एवं सुदीहो अविश्रोगो । अएणहा एकरूक्कलनिवामिमउण-
तुल्लमेअं । उद्दामो मच्चू, पच्चासएणो य । दुल्लहं मणुअत्तं
समुद्दपडिअरयणलाभतुल्लं । अइप्पभूआ अएणे भवा दुक्ख-
वहुला मोहंधयारा अकुसलाणुवधिणो अजुग्गा सुद्धधम्मस्म ।
जुग्गं च एअं पोअभूअं भवसमुद्दे, जुत्तं सकज्जे निउंजिउं
संवरठइअच्छिहं नाणकएणधारं तवपवणजवणं ॥१॥

अर्थ—पूर्व सूत्र मे कथित विधि के अनुसार साधु धर्म की
परिभावना से परिभाषित होकर और पूर्वोक्त गुण प्राप्त कर लेने के

पंच सूत्र

[तृतीय सूत्र]

प्रव्रज्याग्रहण-विधि



मूल—परिभानिग् गाहधम्मो जतोदिग्गुणं जउज्जा मम्म-
मेयं पडिवज्जित्तण् अपरोवतानो । परोवतानो हि तप्पडिवत्ति-
विग्गं । अणुपायो गु एसो । न गलु अट्ठगलारंभओ हिअं ।

अप्पडिवुद्धे कहिंचि पडिवोहिज्जा अम्मापियरे-उभय-
लोगमफलं जीविअं, समुदायकडा कम्मा समुदायफलत्ति
एवं सुदीहो अविओगो । अएणहा एकरूक्कपनिवामिमउण-
तुल्लमेअं । उद्दामो मच्चू, पच्चासएणो य । दुल्लहं मणुअत्तं
समुद्दपडिअरयणलाभतुल्लं । अइप्पभूआ अएणे भवा दुक्कस-
वहुला मोहंधयारा अकुसलाणुवधिणो अजुग्गा सुद्धधम्मस्स ।
जुग्गं च एअं पोअभूअं भवसमुद्दे, जुत्तं सकज्जे निउंजिउं
संवरठइअच्छिहं नाणक्कणधारं तवपवणजवणं ॥१॥

अर्थ—पूर्व सूत्र मे कथित विधि के अनुसार साधु धर्म की
परिभावना से परिभाषित होकर और पूर्वोक्त गुण प्राप्त कर लेने के

॥ पंच सूत्र ॥

[तृतीय सूत्र]

प्रव्रज्याग्रहण-विधि



मूल—परिभाषिणं मातृभस्मो जरोदियगुणं जाडज्जा मम्म-
मेअं पडिवाडिज्जत्तणं अपरोनतानो । परोनतानो हि तपपडिवाडि-
विग्घं । अणुपायो नु णो । न मलु अकुमलारंभयो हिअं ।

अप्यडिबुद्धं कहिंचि पडिवाडिज्जजा अम्मापियरे-उभय-
लोगमफलं जीविअं, समुदायकडा कम्मा समुदायफलत्ति
एवं सुदीहो अविश्रोगो । अण्णहा एकस्सकवनिवामिमउण-
तुल्लमेअं । उदामो मच्चू, पच्चायणो य । दुल्लहं मणुअत्तं
समुदपडिअरयणलाभतुल्लं । अइप्पभूआ अण्णे भवा दुक्ख-
वहुला मोहंधयारा अकुमलाणुवधिणां अजुग्गा सुद्धधम्मस्स ।
जुगं च एअं पोअभूअं भवसमुद्दे, जुत्तं सकज्जे निउंजिउं
संवरठइअच्छिदं नाणकण्णधारं तवपवणजवणं ॥१॥

अर्थ—पूर्व सूत्र मे कथित विधि के अनुसार भावु धर्म की
परिभावना से परिभावित होकर और पूर्वोक्त गुण प्राप्त कर लेने के

सूत्रं चतुर्विधं, सत्त्विकं, राजसिकं, तामसिकं, मिथ्या, अविद्या, अज्ञानं, माहमनसं । उपायश्च चतुर्विधः । न नश्यति ज्ञानो, न चरा, न मरणा, न इष्टविरोधा, नापि प्रमत्तता, न सुखा, न पिपासा, न तृष्णा, कोच, लोभो, मादहा, अस्मत्तत्वं जीवावस्थायां शम्भरागाउरहितं मत्तं मित्रं यथावाहं ति ॥२॥

पवन के वेग से युक्त है। अतः इस मनुष्य भगवत्ता नीचा हो धर्म
रूप आत्मकार्य में नियुक्त करना पारिण।

(यहाँ प्राणानिधान अविमर्शादि रूप चिद्रो के दृष्टान्त हैं महाप्रत । श्रुतज्ञान में निरन्तर उपयोग रूप कर्मधार है योग अन-
शनादि द्वादशविध तपश्चर्या का यथाशक्ति सेवन रूप अनुज्ञान
पवन है ।) ॥१॥

अर्थ—माता-पिता को यह भी समझावे—मेमा शुभ अवसर मिलना कठिन है। किसी भी कार्य के साथ हमकी तुलना नहीं हो सकती। यह अवसर सिद्धि के माधुर्य सम्यग्दर्शन ज्ञान चाग्रित्र का साधक है। सिद्धि ही विवेकवान् जीवों के लिए उपादेय है क्योंकि उसमें न जन्म है, न जरा है, न मरण है, न दृष्ट वियोग है, न अनिष्ट संयोग है, न भूख है, न प्यास है और न कोई दूसरा दोष है। सर्वथा स्वाधीन, समस्त रागादि अशुभ भावों से रहित शांत, शिवस्वरूप और सब प्रकार की बाधा पीडा से रहित है। ऐसी जीवों की वहां अवस्थिति है। [वह अवस्थान क्रोधादि से रहित होने के कारण शांत है, सकल अशिवों के (प्लेग आदि रोगों के) अभाव के कारण शिव है और निष्क्रिय होने के कारण व्यावाधा रहित है।] ॥२॥

यदि शिव को ही जान लें। इस परमात्मा को ही
भक्त की जानना है ॥२॥

अर्थ—यदि तुम मीलों में माता-पिता आदि का परिहास
या मन ही मन अपनी शक्ति और बल के अनुसार उनके विरुद्ध
निर्दोष ही व्यवस्था करें। वह आगे जाय अपनी समस्त अनुमात्र
शुद्ध होना चाहिए। यह उस मूल्य पुरुष की कल्याण और कल्याण
है। इस प्रकार की कल्याण और कल्याण लोक में धर्म की प्रशान्त
जाननी होती है। (शामन की उन्नति करती है।)

इतना करने के बाद माधुधर्म को अंगीकार करना
चाहिए ॥२॥

अर्थ—यदि माता-पिता आदि स्वजन मोक्ष की प्रचलता आदि
के कारण प्रव्रज्या महा धर्म अंगीकार करने की अनुमति न दे तो
हृदय से मायारहित होते हुए भी ऊपर से माया का सेवन करके भी
अनुमति प्राप्त करें, क्योंकि प्राणी मात्र के लिए धर्म की आराधना

मूल—एवं सुकृपस्त्रिण्ण महापुग्गिणे संसारकंतापडि
 अम्मपिडमंगण धम्मपडित्तं निहरिज्जा । तेमिं तत्थ निय
 विणासगे, अपत्तवीजाउपुग्गिमेत्तागज्जे, संभवंतगम्मत्ता
 ओसहे, मरणाडविवागे, कम्मायंके मित्रा । तत्थ मे सुक
 पक्खिण्ण पुग्गिमे धम्मपडिवंधाओ, एवं गमालोचित्र-‘विणम्मं
 एण् अक्खं गम्मत्ताडओमहविरहेण, तस्म मंपाउणे विभाम
 कालमहाणि अ एआणि ववहारओ ।’ तहा मंठविअ मंठवि
 डहलोगचिंताए, तेमिं गम्मत्ताडओमहनिमिचं विमिड्डगुरुमा

संभावना है और यह अभी कुछ समय तक जीवित रह सकते हैं।
 विचार करके वह उनकी औपध के लिए और अपने निर्वाह के लिए
 अगर उन्हें छोड़ कर चला जाता है, तो अच्छा ही करता है। मा
 पिता का यह त्याग अत्याग है, क्योंकि इससे उनके जीवन की
 की संभावना है। ऐसे समय उनका त्याग न करना ही वस्तुतः त्याग
 क्योंकि त्याग न करने से उनकी मृत्यु होगी और सदा के लिए त्याग
 पड़ेगा। किसी भी प्रवृत्ति का मूल्यांकन उसके फल से होता
 धीर-पंडित पुरुष प्रवृत्ति के फल को ही देखते हैं। वह पुरुष और
 लाकर माता पिता को जिला सकता है, अतः उसे ऐसा करना
 उचित है ॥७॥

अर्थ—पूर्वोक्त दृष्टान्त का उपसंहार—इसी प्रकार कोई शु
 पाक्षिक* महापुरुष संसार रूपी अटवी में पड़ा हुआ है
 माता-पिता आदि से सगत होने पर भी धर्म के प्रति अनुरागी है

* जिसका भवभ्रमण कम रह गया है अर्द्धप्रदंगलपरावर्तन से
 कुछ कम समय में जो मुक्ति प्राप्त करने वाला है, वह शुक्लपक्षी
 कहलाता है ।

चतुर्थ सूत्र

[प्रव्रज्या - परिपालना]



मूल — स एवमभिपञ्चयन् ममाग्रे सुविहितावयो किरि-
याफलेण जुञ्जइ । विमुद्धचरणे महामत्ते न विवज्जयमेइ ।
एअग्रभावे अभिप्पेअसिद्धो उवायपवित्तिओ । नाविवज्जत्थोऽ
सुवाए पयइइ । उवाओ अ उवेअसाहगो नियमेण । तस्स
तत्तचाओ अएणहा, अइप्पसंगाओ, निच्छयमयमेअं ॥१॥

अर्थ—सुमुत्तु जीव पूर्व सूत्र में कथित विधि के अनुसार दीक्षा
अंगीकार करके, समीचीन विधि-संपादन के कारण क्रिया के फल को
प्राप्त करता है। क्योंकि वह क्रिया साधक क्रिया हुई है। विशुद्ध
(निगतिचार) चारित्र वाला महात्मा होने से वह सुमुत्तु विपरीतता
को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसके ज्ञान और आचार में किसी प्रकार
का विपर्यास नहीं होता। विपरीतता न होने की वजह से सम्यग् उपाय
में प्रवृत्ति होने से वाञ्छित की सिद्धि होती है, जो विपर्यास को प्राप्त नहीं
है, वह उपाय को छोड़ कर अनुपाय (उपायाभास) में प्रवृत्ति नहीं
करता। और उपाय (कारण) उपेय (कार्य) का नियम से

मूल—अण्णहा अण्णओगो अविहिगहियमंतनाएण ।
 अण्णाराहणाए न किंचि, तदण्णारंभाओ धुवं । इत्थ मग्गदेमणाए
 दुक्खं अवधीरणा अप्पडिवत्ती । नेवमहीअं अहीअं अवगमविर-
 हेणं । न एसा मग्गगामिणो विराहणा अणत्थमुहा, अत्थहेऊ
 तस्सारंभाओ धुवं । इत्थ मग्गदेमणाए अण्णभिनिवेसो पडिवत्ति
 मित्तं किरिआरंभो । एवं पि अहीअं अहीअं अवगमलेसजोगओ ।
 अयं सवीओ निअमेण । मग्गगामिणो सु एसा अवायवहुलस्स ।
 निरवाए जहोदिए सुत्तुत्तकारी हवइ पवयणमाइसंगए पंचस-
 मिए तिगुत्ते ॥३॥

है। ऐसे ही ज्ञान से सम्यक् प्रकार सूत्र का नियोग करता है। यानी उसको व्यवहार में लाता है। सूत्र को इस प्रकार विधिपूर्वक ज्ञात किया ही सम्यग् नियुक्त किया गया ऐसा तीर्थ करादि धीर पुरुषों का शासन है ॥२॥

अर्थ—अन्यथा अर्थात् अविधि से सूत्र का अध्ययन करने से अविधिगृहीत मंत्र के दृष्टान्तानुसार अनियोग (मनुष्ययोग का अभाव) होता है। अविधि से मंत्र ग्रहण किया जाय तो उन्माद, ग्रहपीडा आदि दोष उत्पन्न होते है। और बिल्कुल आराधना ही न की जाय तो अध्ययन का आरंभ ही न करने के कारण निश्चित है कि कुछ भी शुभ या अशुभ फल की प्राप्ति नहीं होती है। ऐसे अनाराधक के समस्त अगर तात्त्विक मार्गदेशना की जाय तो बुद्ध जीव को सिंहनाद की तरह उसे दुःख उत्पन्न होता है। यदि वह कुछ लघु कर्मी हो तो उसे दुःख नहीं हाता, किन्तु उम देशना की वह अवगणना अवधीरणा करता है। यदि वह अधिक लघु कर्मी हो तो उसे दुःख भी नहीं होता और उमके द्वारा अवगणना भी नहीं होती है,

मूल—एवं कम्मनाहिगहिण, जग्गुभूय जम्माअंअण्णे,
 विण्णाय्या दुक्कमरुवेणं, निज्जिण्णो तत्तयो, तओ सुगुरुवयणं
 अणुद्धाणाइणा तमवगच्छिय, पुब्बुत्तविहाणओ पवने
 सुकिरियं पव्वज्जं, निरुद्धपमायाचारे असारमुद्धभोई, मुच्चमाणे
 कम्मवाहिणा, नियत्तमाणिद्धविओगाइवेअण्णे, मम्बलम्भ
 चरणारुग्गं, पवड्ढमाणसुहभावे, तल्लाभनिच्चुईए तप्पडिबंध-
 विसेसओ, परीसहोवसग्गभावे वि तत्तसंवेअणाओ, कुमलासय
 बुद्धीथिरासयत्तेण, धम्मोवओगाओ सया थिमिए, तेउल्ले-
 ससाए पवड्ढइ । गुरुं च बहुमन्नइ जहोचियं असंगप-
 डिवत्तीए निसग्गपवित्तिभावेण ॥७॥

पूजादि करके रोग पकाने इत्यादि सत् क्रिया में प्रवृत्त हुआ । अब वह
 स्वेच्छाचार को त्याग देता है, व्याधि के मुताबिक हलका पथ्य भोजन
 करता है । तब वह जैस जैसे व्याधि से मुक्त होता है वैसे वैसे उसकी
 वेदना दूर होने लगती है । फिर खाज वगैरह पीडा की शान्ति पर से
 इतना आरोग्य प्राप्त हुआ देखकर उसकी आरोग्य-अभिलाषा बढ़ती
 चलती है । उसका लाभ होने पर अधिक आरोग्य के विषय में वह
 आग्रही बन जाने से शिरावेध (नमो को बाँधना) और चार आदि
 का योग होने पर भी उसी से व्याधि के उपशम द्वारा आरोग्य की प्राप्ति
 होगी वैसा वह जानता है । मनोवांछित की प्राप्ति होने से उन
 शिरावेध आदि में व्याकुलता किये बिना, उपचार सम्बन्धी क्रिया के
 प्रयोग से शारीरिक कष्ट का ख्याल न करके और मन में भी व्यथा का
 अनुभव न करके, शुभ लेश्या (अध्यवसाय) से बढ़ता ही चला
 जाता है और वैद्य का बहुमान करता है ॥६॥

अर्थ—पूर्वोक्त दृष्टान्त का उपनय.—इसी प्रकार कर्म रूपी

एसा गुरुई विद्याहिआ, भावसारा विसेसओ भगवंतव-
हुमाणेणं । 'जो मं पडिमन्नइ से गुरु' ति तदाणा ।
अन्नहा, किरिआ अकिरिआ, कुलडानारीकिरिआममा,
गरहिआ तत्तवेईणं अफलजोगओ । विसरणतत्तीफलमित्थ
नायं । आवट्टे खु तप्फलं, असुहाणुवंधे ॥७॥

ऐसे नि.मङ्ग भाव में गुरु का स्वीकार (प्रतिपत्ति) उसकी सहज प्रवृत्ति बन जाती है। ऐसी गुरु की प्रतिपत्ति बहुत उच्चकोटि की और महत्त्वपूर्ण कही गई है, क्योंकि इसमें कोई लोभादि ओदयिक भाव न होने से वह विशेषतया अमङ्ग प्रतिपत्ति है, भावप्रधान है, और यह भी कारण है कि उसमें अचित्त्य चिन्तामणि तुल्य भगवान् के प्रति बहुमान (ममत्व) निहित है, क्योंकि भगवान् की ऐसी आज्ञा है कि जो मुझे भाव से स्वीकार करता है, वह गुरु को स्वीकार करता ही है। स्वीकार का तत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। अन्यथा गुरु को स्वीकार किये बिना या गुरु का बहुमान किये बिना जो प्रतिलेखना आदि क्रिया की जाती है, वह वास्तव में अक्रिया (असत्क्रिया) है। वह कुलटा नारी की उपवास क्रिया के समान स्वच्छन्द क्रिया होने से तत्त्व ज्ञानियों द्वारा निन्दित है। ऐसी क्रिया निष्फल या इष्ट मोक्ष की अपेक्षा अन्य सांसारिक फल वाली होती है। विष मिश्रित अन्न खाने से होने वाली विपाकदारुण वृत्ति रूप फल के समान वह क्रिया विराधना-सेवन से अनिष्ट एवं तुच्छ फल ही प्रदान करती है। अशुभ कर्म के अनुबंध वाला आवर्त यानी वध्रमण ही उस विराधना स्वरूप विष का फल है ॥७॥

मूल—तस्यो सुक्के सुक्काभिजाई भवड । पायं छिण्ण-
कम्माणुबंधे खवड् लांगणणं । पडिसोअगामी अणुमोअ
निवित्ते, सया सुहजोगे एम जोगी विआहिए । एस आराहगे
सामणणस्स, जहागहिअपइण्णे, सच्चोवहासुद्धे, संधइ सुद्धं
भयं समं सभवसाहगं भोगकिरिया सुरूवाइकप्पं । तस्यो ता
संपुण्णा पाउणइ अनिगलहेउभावओ असंकिलिद्धसुहरूवाओ
अपरोवताविणो सुंदरा अणुबंधेणं । न य अण्णा संपुण्णा ॥६॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह महासुनि 'शुक्ल' अर्थात् अग्न्यंड चारित्र
वाला, भास्वरहित, दृक्, शुभ आरंभ वाला और हितपरिणामवान
तथा 'आलाभिजाय' अर्थात् उन अखण्ड चारित्रादि गुणों की
प्रधानता वाला हो कर्मानुबन्ध की छिन्न-सो अवस्था वाला बन जाता
है । ऐसा यह भगवद्बचन से प्रतिकूल लोकमंज्ञा को जीत लेता
होकर संज्ञा यह पटुत भन्य जीवों की प्रवृत्ति पर प्रीति स्वरूप है ।
जोत लेने पर वह पतिसोतगामी हो जाता है और अनुप
निवित्त हो जाता है, अर्थात् लोकाचार स्वरूप नदी प्रवाह का
सरण नदी परता, समारसिक जीवों का सुलभ मंसागवर्धक
सिने से विभूत हो जाता है । उसके योग मदैव शुभ यान्ती अ
नी पार्श्व से पूरा होती है । ऐसे सारक को ही भगवान ने
जगत् है । नदी संयम का वास्तव में सारक है और
संयम परितः परितः जाता होने से प्रण की हुई प्रनिज
प्राप्त है और निर्योग्य सारक होने से सर्वोपाय-शुद्ध
... .. (मे-१) सारक शुद्ध भव का
... .. योग्यता प्राप्त कर
... .. योग्यता प्राप्त कर

पंचम सूत्र

[प्रव्रज्याफल]

मूल—स एवमभिमिद्धे परमव्रमे मंगलालम् जन्मजरा-
मरणरहिम् पहीणारुहे अणुबंधमत्तिवज्जिम् संपत्तनिअसस्से
अकिरिण् महावसंठिण् अणंतनाणे अणंतदंसणे ॥१॥

मूल—से न सहे, न रुवे, न गंधे, न रमे, न फासे,
अरुची सत्ता, अणित्थंत्थमंटाणा, अणंतविरिया, कयकिञ्चा,
सन्ववाहाविवज्जिआ, सन्ववाहा निरनिकखा, थिमिया,
पसंता ॥२॥

अर्थ—चौथे सूत्र में प्रव्रज्या के पालन की विधि बतला कर यहाँ
पांचवे सूत्र में उसका फल बतलाते हैं ।

वह प्रव्रज्यापालक साधु सुखपरम्परा द्वारा मिद्धि प्राप्त करके
अब सदाशिवत्व के कारण परमब्रह्म स्वरूप बन जाता है । गुणोत्कर्ष
के कारण मंगल के आवास रूप हो जाता है । जन्मादि के कारण न
रहने से जन्म जरा और मरण से रहित उनके सर्व अशुभ सदा के
लिए नष्ट हो जाते हैं । अशुभ की अनुबंध शक्ति से भी रहित हो
वह अपने शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त, गमनादि क्रिया से रहित, स्व-
सहज स्वभाव में स्थित, अनन्त ज्ञानवान् और अनन्त दर्शनवान् हो
जाता है ॥१॥

अर्थ—वह सिद्ध जीव न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है,

तत्त' । निच्छयमयमेयं विजोगवं च जोगो त्ति न एय जोगो
 भिएणं लक्खणमेयस्म । न इत्थाविकखा । महावो खु एयां
 अगंतमुहसहावकपो । उवमा इत्थं न विज्जह । तव्भावोऽणु-
 भवो परं तस्मैव । आणा एया जिगाणं मव्वएणूणं अवि-
 तहा एगंतया । न वितहत्तं निमित्तं, न चानिमित्तं कज्जं
 ति । निदंयणमित्तं तु नवरं ॥ ४ ॥

अर्थ—प्र० अगर् मंयोग ही दुःख का कारण है तो मिट्टों को
 आकाश के साथ मंयोग होने में दुःख क्यों नहीं होता ?

उ०—मिट्ट जीव का आकाश के साथ मंयोग नहीं है, क्यों कि
 सिद्ध अपने स्वरूप में ही स्थित हैं ।

प्र०—मिट्ट आवार के बिना कैसे रह सकते हैं ?

उ०—ऐसा क्यों ? आकाश स्वयं ही दूसरे के आधार बिना
 रहता ही है न । एक मत्ता दूसरी मत्ता के रूप में परिणत नहीं होती,
 या न कोई अपने स्वरूप में रहकर अथवा स्वरूप पलट कर किसी
 अन्य के आधार पर रहता है । यह तत्त्व केवली सर्वज्ञ भगवन्ता से
 गम्य है, अचिन्त्य है । यह निश्चयनय का मत है । (व्यवहार मत
 भिन्न है, एक वस्तु दूसरे आधार पर रहती है, तो यहा मिट्टों का
 आकाश में रहने में मंयोग सिद्ध होगा, लेकिन उस मंयोग की वियोग
 शक्ति क्षीण होने की वजह दृष्टता नहीं है यह सुसन्नत है ।)

मंयोग, वियोगवाला होता है, यह मिट्टान्त में मानना चाहिए
 कि मिट्ट का आकाश के साथ कभी वियोग न होने के कारण वैसा
 मंयोग नहीं हुआ है । जो मंयोग हुआ है उसका लक्षण

—अच्छा, यह तो ठीक है। तो अब पाप, माया, पाप तो है पर
कभी होने में आता है, जो असाध्य हो जाता है। कभी जो असाध्य
हो जाता है तो उसे मर जातिरूप में जो ली जा रहा है, जो असाध्य
हो जाता है तो उसे मर जातिरूप में जो ली जा रहा है। पाप नियम का (मर्त्यमम के
पाप) को हटा दी जा है, यह ठीक हो गई है।

इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि, असाध्य पाप के कोड़े
जिसमें जान नहीं सकता, पैसा यदि के मुक्त हो यदि के मित्राय अन्य
कोड़े नहीं जान सकता तथा कि वह सिद्धि पात्र के तायोपशमिक
भाष में ही अनुभवात्मक है जोर नियोगता के मुक्त हो गयी नहीं
जान सकता, मतिपात्र न होने का मुक्त मतिपात्रों के जान सकते ?
मित्रों का मुक्त मान्य में अनिन्तनाय है, क्योंकि वह मुक्ति का
विषय ही नहीं है। वह मुक्त एक मित्र की अपेक्षा में यदि अनन्त
है अर्थात् उसकी आदि तो है पर अन्त नहीं है, परन्तु प्रवाह की
अपेक्षा में अनादि-अनन्त है। मित्र भगवान के विषय में भी यही
समझना चाहिए, अर्थात् एक मित्र को अपेक्षा आदि है, अन्त नहीं
और प्रवाह की अपेक्षा आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं है।

प्र०—भव्यत्व तो समान है तब भिन्न २ काल में सिद्धि क्यों ?

उ०—प्रत्येक जीव का तथाभव्यत्व भिन्न भिन्न है। कोई जीव
कभी और कोई जीव कभी सिद्ध होता है, इसका कारण उस उस

न एसा अन्नेसिं देआ । लिंगविवज्जयाओ तप्परिएणा ।
तयणुग्गहट्ठयाए आमकुं भोदगनासनाएणां, एसा करुण त्ति
बुव्वइ । ऐगंतपरिसुद्धा, अविराहणाफ ना, तिलोगनाहवहु-
मांणेणां निम्मेअसमाहिग, त्ति पव्वज्जाफलसुत्तं ॥ १० ॥

भगवान की आज्ञा दूसरों को-जो अपुनर्बन्धक नहीं भवाभितन्दी
हैं उन्हें नहीं देनी चाहिए । उनकी पहचान पूर्वोक्त चिह्न के विपर्याय
से हो सकती है । उनके अनुग्रह के लिए अर्थात् उनके हित के लिए
ही यह आज्ञा उन्हें देना उचित नहीं । जैसे कच्ची मिट्टी के घड़े में
ढाला हुआ पानी उस घड़े का ही विनाश कर देता है, उसी प्रकार
अपान्न को दिया हुआ आगम उसी का अहितकर्त्ता सिद्ध होता है ।
अतएव उसे आज्ञा न देना ही उस पर करुणा करना है । यह करुणा
उसको अनिक दोषोत्थान रूप अहित से निवारण करने वाली होने से
एकान्त शुद्ध है, अविराभना रूप फल देने वाली है और त्रिलोकीनाथ
तीर्थ हर भगवान के बहुमान के कारण उत्पन्न होती है इसलिए
मोक्ष साधक है । आगम परिणत हुए हैं उस पुरुष को ही ऐसा
करना प्यो है, क्यों कि उस ही का भगवान पर अत्यंत बहुमान
होता है ।

इस प्रकार प्रारब्धा का फल निरूपण करने वाला पावन सूत्र
समाप्त हुआ ॥ १० ॥

॥ पंचसूत्र समाप्त ॥

‘दिव्य-दर्शन’

(गुजराती) साप्ताहिक-पत्र

५

इस पत्र में सूक्ष्म चिंतनपूर्ण अति आवश्यक और बढ़िया अप्रलेख एवं मुख्यतया पू० सिद्धान्तमहोदधि आचार्यदेव श्री विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के विद्वान शिष्यरत्न पंन्याराजी म० श्री मानुविजयजी गणीवर के सवेग-वैराग्यसम आध्यात्मिक प्रवचन का बहुत सरल रोचक भाषा में अवतरण प्रकाशित होता है। वर्तमान काल में विषम संयोग वश कई दुःखद समस्याएँ व्यापक जडभाद तथा विलासवाद वश कई दुष्कृत एवं भ्रान्त कल्पनाएँ और असुविधा वश कई चिन्ता-सन्नाप-दुर्व्याप्त उच्च मानवजीवन को कर्त्तव्यभ्रष्ट, सुकृतविहीन, दुःखग्रस्त एवं भयवर्धक कर रहे हैं आप अगर इनसे बचना चाहते हैं, तब अवश्य इस पत्र को नियमित पढ़ें। इसमें सुचारु रूप से आपको उच्च तत्त्वदर्शन, शुभ आश्वासन, जीवनविक्रम की मनोरम चाबियाँ, सुशोभन जीवन के उत्तम मार्गदर्शन इत्यादि प्राप्त होंगे। वार्षिक शुल्क रु ६)

लिंगें.—

दिव्यदर्शन कार्यालय, कालमीनी पोल, अहमद

या

जेठालाल चुनीलाल धीवाला, ३५५ कालवादेवी, बम्बई २

‘दिव्य-दर्शन’

(गुजराती) साक्षाहिक-पत्र

ॐ

इस पत्र में सूक्ष्म चिन्तनपूर्ण अति आवश्यक और
 बढ़िया अप्रलेख्य एवं सुन्यतया प्र० सिद्धान्तमहोदय आचार्यदेव श्री
 विजयप्रसन्नसूरीश्वरजी महाराजा के विद्वान् शिष्यरत्न
 पं. नागजी म० श्री मानुविजयजी गणीवर के संवेग वैराग्यसम
 आध्यात्मिक प्रवचन का बहुत सरल रोचक भाषा में अन्तरण प्रकाशित
 होना है। वर्तमान काल में निरम संयोग वश कई दुःखद समस्या
 व्यापक जटिल तथा विनाशदायक वश कई दुःखद एवं भ्रान्त कल्पना
 और अप्रसन्नता का कई विनाशनाश दुःखनि उत्पन्न मानसिकता
 को कर्तव्य प्रकाश, सुकर्तव्यता, उपायमात्रा और भवार्थक कर रहे हैं
 व्यापक और इनसे बचना चाहते हैं, एवं वास्तविक इस पत्र को नियमित
 करें। अतः इस पत्र से आपको उच्चतर दर्शन, शुद्ध आध्यात्म
 गति, विनिर्वाण हो मनोरम चरित्र, सुशोभन जीवन के उदा
 रण प्राप्त होंगे। आपक शुक्र ५)

नियं

डि. यश्वन्त सत्यनिष्ठ, का. नृपतीनी पौन, यशमः

या

क. क. इतिहास विभाग, ३७७ कानपुरी, यशमः २

